THE TIMES OF INDIA

Date:16-09-23

Wrong Target

Life ban from polls for convicted netas is a bad idea

TOI Editorials

An amicus curiae appointed by the Supreme Court in a petition related to criminalisation in politics suggested politicians convicted in criminal cases be permanently barred from contesting elections. Convictions presently lead to a bar of six years from elections. The suggestion for a life ban is based on the logic that it violates the Constitution's fundamental right to equality, among other things, as civil servants in a similar position are sacked. Are politicians placed on a pedestal?

The relevant law for disqualifying convicted politicians is the Representation of the People Act. Section 8 of this law aims to check criminalisation of politics and lays out grounds for disqualification. Over the last two decades, the Supreme Court's approach to the matter has been to interpret the law in a way that mandates candidates keep voters informed of outstanding criminal cases but avoid sweeping change. There was one exception. In 2013, SC invalidated a section that allowed a convicted politician time to appeal. Disqualification was made immediate. In March 2023, Rahul Gandhi was convicted by a trial court for defamation and sentenced to two years in jail. His disqualification from the Lok Sabha was immediate. Gujarat HC later upheld the trial court's verdict.

Finally, in August, SC stayed the sentence as the verdict didn't provide areason for it and LS reinstated his membership. Analysing affidavits filed by 763 current parliamentarians, ADR and National Election Watch this week said 40% have outstanding criminal cases. Tightening RPA clearly doesn't solve the criminalisation problem. India's criminal justice system, however, has many weaknesses. Therefore, enhancing punishments on a weak foundation only provides perverse incentives for governments to exploit the system to fix rivals. There's no case to change the existing law by an unconvincing reference to equality.

THE ECONOMIC TIMES

Date:16-09-23

Look Up, India Needs To Live There Well

High-rises must grow smartly, sustainably

ET Editorials

Gurugram is tweaking its urbanisation model to build taller buildings. This makes for efficiency from a town-planning perspective, reducing the cost of building cities and lowering the impact on the environment than that caused by sprawl. Given the pace of urbanisation in India, municipal bodies are challenged to keep housing costs low while providing facilities such as transport. The answer lies in the vertical growth of cities where people live and work in dense pockets served by mass transit. Land-starved Mumbai houses three in four of India's tall buildings. But other cities are beginning to look upwards as well to cope with migration. Construction technology and design are now at a point where tall buildings can give back more to the environment than they cost. This weighs the argument in favour of vertical cities.

Yet, the argument can be taken too far, as China has done, by allowing forests of high-rises to grow in provincial towns. Central planning has run amok there. Cities need to grow organically and generations of town planners will be drawing lessons from China's ghost towns. Efficiency and cost have to be balanced against comfort and habitability. The spectre of cities gobbling up the countryside is no less dystopian than buildings rising to dizzying heights. Both forms of urban growth deliver in controlled doses, and governments have a tough job with titration.

India has a relatively slow pace of rural-urban migration. This pace will subside as fertility rates stabilise. Still, its cities will absorb the biggest chunk of the worldwide population currently moving out of villages. It needs to get urbanisation right to sustain its growth and benefit from the demographic dividend. The choice of upward or outward growth by its cities will ensure economic growth is sustainable, financially and ecologically. India's younger cities at the frontline of job creation will have to take the lead.

दैनिक भास्कर

Date:16-09-23

चुनाव आयोग की गरिमा संविधान प्रदत्त है

संपादकीय

चुनाव वह नींव है, जिस पर लोकतंत्र की इमारत खड़ी है। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिए संविधान ने अनुच्छेद 324 के तहत चुनाव आयोग बनाया है। आयोग स्वतंत्र हो इसके लिए मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाए जाने की प्रक्रिया सुप्रीम कोर्ट के जज के समक्ष रखी वह निडर होकर फैसले ले। पिछले 70 वर्षों से यह प्रैक्टिस रही है कि यह संस्था सीधे प्रधानमंत्री और मंत्री से संवाद करती है। इसको जज के बराबर इसलिए रखा गया है कि प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री या मंत्रियों के खिलाफ भी चुनावी अनियमितता के आरोप की सुनवाई भी यही करता है। सरकार को इसके सदस्यों की नियुक्ति की प्रक्रिया भी ऐसी बनानी थी कि वह साफ-सुथरी दिखे। लेकिन अब व्यवस्था बदलकर चयन समिति में पीएम, एक कैबिनेट मंत्री और विपक्ष के नेता (यानी बहुमत सरकार का) होंगे, इस सम्बन्ध में कानून लाकर आयोग के सदस्यों का दर्जा कैबिनेट सचिव के बराबर किया जा रहा है। यानी चुनाव आयोग अब न किसी मंत्री बुला सकेगा, न उसे आदेश दे सकेगा। कैबिनेट सचिव के समकक्ष बनाने से चुनाव आयोग की गरिमा कम होगी। जहां एक तरफ जजों की नियुक्ति के लिए बने कॉलेजियम को लेकर सरकार नाराज है, वहां यह नया कानून सरकार के गुड गवर्नेंस और मिनिमम गवर्नमेंट एंड मैक्सिमम गवर्नेंस के दावे के विपरीत माना जाएगा।

दैनिक जागरण

Date:16-09-23

न्याय में तकनीक का प्रयोग

संपादकीय

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालयों और न्यायाधिकरणों में वर्चुअल यानी आभासी सुनवाई बंद होने का संज्ञान लिया। उसने सभी उच्च न्यायालयों के साथ राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण और राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण को भी नोटिस जारी कर उनके रजिस्ट्रारों से पूछा है कि क्या वर्चुअल सुनवाई समाप्त कर दी गई है? इन सभी से यह बताने को भी कहा गया है कि यदि वर्चुअल सुनवाई बंद हो गई है तो उसके कारण क्या हैं? आखिर जब कोविड काल में वर्चुअल सुनवाई की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है, तब फिर इस सिलसिले को समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं। यह ठीक है कि फिलहाल कोविड महामारी का कहीं कोई खतरा नहीं

और लगभग सभी तरह के प्रतिबंध समाप्त हो चुके हैं, लेकिन उच्च न्यायालयों और विभिन्न न्यायाधिकरणों में वर्चुअल सुनवाई इसलिए जारी रहनी चाहिए, क्योंकि उससे लोगों के समय एवं संसाधन की बचत हो रही थी। तकनीक के उपयोग ने लोगों को यह विकल्प उपलब्ध कराया था कि वे चाहें तो न्यायालय के समक्ष स्वयं उपस्थित हों या फिर वर्चुअल रूप में अपने को प्रस्तुत करें।

न्यायालयों में तकनीक का प्रयोग वादी-प्रतिवादी के साथ वकीलों के लिए भी सुगम था। वे कहीं पर भी रहते हुए न्यायालयों में आभासी रूप से उपस्थित हो सकते थे। इसी कारण सुप्रीम कोर्ट ने न्यायालयों में हाइब्रिड तरीके से सुनवाई की आवश्यकता जताई थी। यह तरीका न केवल जारी रहना चाहिए, बल्कि उसे बढ़ावा भी दिया जाना चाहिए, ताकि निचली अदालतों में मुकदमे लड़ने वालों को भी उसका लाभ मिले। आवश्यक केवल यह नहीं है कि न्यायालय तकनीक का अधिकाधिक उपयोग करें, बल्कि यह भी है कि वे उन आवश्यक संसाधनों से लैस हों, जिनसे मामलों का निस्तारण यथाशीघ्र हो सके। गत दिवस ही सुप्रीम कोर्ट की ओर से यह जानकारी दी गई कि उसकी वेबसाइट से मुकदमों की आनलाइन जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस वेबसाइट में इसका भी विवरण उपलब्ध होगा कि सुप्रीम कोर्ट में कितने मामले लंबित हैं और कितनों का निस्तारण हो चुका है? निःसंदेह इस व्यवस्था से पारदर्शिता की ओर एक कदम आगे बढ़ाया गया है, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं। बात तब बनेगी, जब तारीख पर तारीख का सिलसिला बंद होगा और लोगों को समय पर न्याय मिलेगा। इसके लिए निचली अदालतों से लेकर उच्चतर अदालतों में न्यायाधीशों की संख्या तो बढ़ानी ही होगी, उन कारणों का निवारण भी करना होगा, जिनके चलते मामले लंबे खिंचते रहते हैं। इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि निचली अदालतों से लेकर सुप्रीम कोर्ट में लंबित मामलों की संख्या चार करोड़ के आंकड़े को पार कर गई है। यह निराशाजनक स्थिति है। इससे देश को उबारना ही होगा। इसके लिए न्यायिक तंत्र में तकनीक का उपयोग करने के साथ अदालतों के काम करने के ढर्रे को भी बदलना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:16-09-23

जनोन्मुखी होने की कवायद

टी. एन. नाइनन

भारत में केंद्र और राज्यों की सरकारें दुनिया की सबसे अधिक व्यय करने वाली सरकारें नहीं हैं। कई क्षेत्रों में सरकारें अपने देश के जीडीपी के लिहाज से अधिक व्यय कर रही हैं। इनमें विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं तो हैं ही, साथ ही लैटिन अमेरिका, मध्य और पूर्वी यूरोप के देश तथा मध्य तथा पश्चिमी एशिया के देश शामिल हैं। परंतु भारत की सरकारें भी व्यय में पीछे नहीं हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के विश्व आर्थिक दृष्टिकोण के आंकड़ों के मुताबिक भारत सरकार राष्ट्रीय स्तर पर अपने जीडीपी का करीब 28 फीसदी व्यय करती है। यह दक्षिण-पूर्व एशिया के कई देशों से अधिक तो है ही सब-सहारा अफ्रीका के कई देशों से भी यह अधिक है। भारत श्रीलंका और बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों की तुलना में भी अधिक व्यय करता है।

ऐसे व्यय का नतीजा क्या है? उदाहरण के लिए बांग्लादेश का सरकारी व्यय भारत की तुलना में आधा है और वह जीडीपी के 14.5 फीसदी के बराबर है लेकिन उसकी जीवन संभाव्यता हमसे बेहतर है और वहां बच्चों की स्कूलिंग के साल भी अधिक होते हैं। प्रति व्यक्ति आय के मामले में भी वह भारत के आसपास ही है। मलेशिया, थाईलैंड और वियतनाम जैसे दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश स्वास्थ्य और शिक्षा के मामले में हमसे बेहतर स्थिति में हैं जबकि उनकी सरकारें जीडीपी का अपेक्षाकृत छोटा हिस्सा खर्च करती हैं। इन देशों तथा कई अन्य देशों का राजकोषीय घाटा भी कम है और उनका सार्वजनिक ऋण भी अपेक्षाकृत कम है। बांग्लादेश में यह भारत के 83.2 फीसदी की तुलना में आधा है और वियतनाम में इससे भी कम। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि भारत के उच्च व्यय ने बेहतर बुनियादी ढांचा मुहैया कराया है। इसे कैसे समझा जा सकता है? एक जवाब तो यह है कि प्रतिशत भ्रामक हो सकते हैं। प्रति व्यक्ति कम जीडीपी का उच्च प्रतिशत प्रति व्यक्ति कम विशुद्ध व्यय के रूप में नजर आ सकता है। यानी भारत की सरकार का आकार जीडीपी की तुलना में काफी बड़ा हो सकता है। इसके बावजूद वह दक्षिण-पूर्व एशिया के उच्च आय वाले देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति व्यय कम करता है। ऐसे में स्वास्थ्य और शिक्षा में उसका प्रदर्शन भी उनसे कमतर है। बांग्लादेश इस मामले में अपवाद है और वह प्रति व्यक्ति कम व्यय के बावजूद बेहतर प्रदर्शन कर रहा है।

परंतु यह भी सच है कि भारत में जहां सरकारों ने कई तरह की सेवाएं मसलन स्कूली शिक्षा, चिकित्सा सुविधा आदि मुहैया कराई है, वहीं उनकी गुणवत्ता भी कमजोर रही है। ऐसे में प्रधानमंत्री की इस टिप्पणी पर ध्यान देने की जरूरत है कि सरकारी कार्यक्रमों को अधिक जनोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है। यानी कम दिक्कतों के साथ बेहतर आपूर्ति। हाल ही में जी20 के संदर्भ में भी नरेंद्र मोदी ने कहा कि जीडीपी केंद्रित नजरिये के बजाय मानव केंद्रित नजरिया अपनाना होगा। मोदी को यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि वह इन बातों पर पहले से अमल करते आए हैं। मिसाल के तौर पर सबको बिजली और पानी उपलब्ध कराना, घरेलू महिलाओं को सब्सिडी पर स्वच्छ ईंधन मुहैया कराना, सरकारी सब्सिडी से बनने वाले मकानों के निर्माण की गति तेज करना, शौचालय बनाना, मुफ्त खाद्यान्न और चिकित्सा बीमा मुहैया कराना और किसानों को नकद राशि देना। उल्लेखनीय है कि ऐसा करते समय उन्होंने सरकारी निवेश भी बढ़ाया। खासतौर पर परिवहन अधोसंरचना के क्षेत्र में। उन्होंने भविष्य के लिए एक विस्तारवादी प्रोत्साहन कार्यक्रम शुरू किया ताकि चुनिंदा विनिर्माण क्षेत्रों में निवेश बढ़ाया जा सके।

अभी इस रुख के सामाजिक-आर्थिक नतीजों का अनुमान लगाना जल्दबाजी होगी। आंशिक तौर पर ऐसा इसलिए कि सरकार की सांख्यिकीय व्यवस्था समुचित नहीं है बल्कि ऐसा इसलिए भी है कि बहुत सारी हालिया पहलों के परिणाम अभी सामने आने बाकी हैं। बहरहाल, एक समस्या पहले ही नजर आ रही है: जीडीपी के हिस्से के रूप में सरकारी व्यय (केंद्र और राज्यों का) बीते कुछ वर्षों में थोड़ा कम हुआ है जबकि जीडीपी की तुलना में व्यय एक दशक पहले की तुलना में करीब एक फीसदी बढ़ा है। परिणामस्वरूप घाटा और सार्वजनिक ऋण दोनों बढ़े। रेटिंग एजेंसी फिच ने राजकोषीय स्थिति को एक अहम मसला बताया। अगर बिना व्यय को कम किए घाटे और कर्ज के स्तर को कम करना है तो इसका तरीका यह है कि तेज आर्थिक वृद्धि हासिल की जाए ताकि प्रति व्यक्ति जीडीपी में सुधार हो। सरकारें चाहे जितना जनोन्मुखी होना चाहें, सामाजिक निवेश और कल्याणकारी पैकेजों के लिए और अधिक धन, व्यय पर दोबारा ध्यान केंद्रित करने या (फिर से) आर्थिक वृद्धि से ही उपलब्ध होगा। दक्षिण-पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को लाभ हुआ क्योंकि उन्होंने दोनों काम किए और आज वे बेहतर स्थिति में हैं। वृद्धि मायने रखती है। सरकारों को मानवकेंद्रित तो होना चाहिए लेकिन साथ ही जीडीपी पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

जनसत्ता

Date:16-09-23

नुमाइंदगी में निर्मलता

संपादकीय

राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों का प्रवेश रोकने के लिए लंबे समय से वास चलती शती के लागू का प्रथी दल और उनके नेता इसे लेकर चिंता जताते हैं, मगर विडंबना यह है कि अब तक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं बन सकी है, जिसमें किसी अपराध में लिप्त रहे व्यक्ति को संसद या विधानसभा में पहुंचने से रोका जा सके। मौजूदा कानूनों में जो प्रावधान किए भी गए हैं, वे एक स्तर के बाद इस मामले में कारगर नहीं रह पाते यह बेवजह नहीं है कि आज भी देश की राजनीति को आपराधिक छवि के लोगों से मुक्त करने का काम अधूरा है। अब इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमित्र ने अपनी एक रपट में कहा है कि अगर कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए एक बार दोषी करार दे दिया जाता है तो उसके चुनाव लड़ने पर आजीवन प्रतिबंध लगा देना चाहिए। इस रपट को राजनीति में आपराधिक छवि के लोगों के दखल को रोकने की दिशा में एक अहम विचार के रूप में देखा जा रहा है।

गौरतलब है कि मौजूदा कानूनी व्यवस्था के तहत अदालत की ओर से किसी अपराध का दोषी घोषित हो जाने और दो साल से ज्यादा की सजा पाने वालों को चुनाव लड़ने पर पाबंदी है, लेकिन यह अवधि छह साल की है। इस अवधि के बाद वही व्यक्ति फिर से संसद या विधानसभा का चुनाव लड़ सकता और जीतने के बाद जनप्रतिनिधि कहला सकता है। अब न्यायमित्र ने अपनी रपट में कहा है कि सांसदों को अधिक पवित्र और कानून का पालन करने वाला होना चाहिए। चूँकि सांसद और विधायक लोगों की संप्रभु इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए एक बार नैतिक अपराध से जुड़ा पाए जाने के बाद उन्हें स्थायी रूप से चुनावी राजनीति के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाना चाहिए। इस संदर्भ में यह पक्ष विचार योग्य हो सकता है कि केंद्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू सेच नियमों के अनुसार, नैतिक अधमता से जुड़े किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्ति को सेवा से वखोस्त किया जा सकता है, मगर राजनेताओं को इस मामले में अलग स्तर पर क्यों रखा गया है। हालांकि दिसंबर, 2020 में केंद्र सरकार ने सरकारी कर्मचारियों और राजनेताओं के बीच तुलना को खारिज कर दिया था। सवाल है कि क्या इसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जा सकता है?

जाहिर है, इस मसले पर अब एक सर्वसम्मत निष्कर्ष पर पहुंचने की जरूरत है, जिसके जरिए राजनीति को अपराधीकरण से पूरी तरह मुक्त किया जा सके। लेकिन आज देश भर में ऐसे अनेक सांसद और विधायक हैं, जिनके खिलाफ लंबित मामलों की संख्या बड़ी है। हाल ही में आई एडीआर यानी एसोसिएशन आफ डेमोक्रेटिक रिसर्च की एक रपट में बताया गया कि करीब चालीस फीसद मौजूदा सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। इनमें से पच्चीस फीसद मामले गंभीर अपराधों से जुड़े हुए हैं, जिनमें हत्या, हत्या की कोशिश, अपहरण, महिलाओं के विरुद्ध अपराध जैसे मामले शामिल हैं। सवाल है कि देश की संसद तक में इस स्थिति के रहते राजनीति को आपराधिक छवि से मुक्त करने की सदिच्छा का क्या हासिल होगा! निश्चित रूप से यह एक विद्रूप ही है कि किसी अपराध का दोषी होने और सजायापता होने के बावजूद कोई व्यक्ति जनता की नुमाइंदगी करने के दावे के साथ चुनाव मैदान में उतारता है जनता की भलाई

करने का वादा और दावा करता है और चुनाव जीत जाने पर विधाविका में बैठ कर कानून बनाने की प्रक्रिया में हिस्सा भी लेता है।